International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 1, January- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

आचार्य शंकुक एवं अनुमितिवाद

डॉ०भवानीशंकर शर्मा 'महाजनीय'

राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू (राजस्थान)

आचार्य मम्मट की दृष्टि में श्रीशंकुक के मत का सार

आचार्य शंकुक मम्मट से पूर्ववर्ती हैं, यही कारण है कि उन्होंने उनके मत को अपने काव्यप्रकाश में उद्धृत किया है. चार प्रमुख मतों में शंकुक के मत को स्व ग्रन्थ में स्थान देने से ही उसकी महत्ता सिद्ध हो जाती है. आइये वाग्देवतावतार मम्मट की दृष्टि में शंकुक का मत क्या है, इसे जानें, वे कहते हैं—

राम एवायम् अयमेव राम इति न रामोऽयमित्युत्तरकालिके बाधे रामोऽयमिति ,रामः स्या द्वा न वायमिति रामसदृशोऽयमिति च सम्यग्-मिथ्या-संशय-सादृश्य-प्रतीतिभ्यो विलक्षणया चि त्रतुरगन्यायेन रामोऽयमिति प्रतिपत्त्याग्राह्ये नटे—

सेयं ममाङ्गेषु सुधारसच्छटा सुपूर कर्पूर शलाकिकादृशोः।
मनोरथ श्रीर्मनसा शरीरिणी प्राणेश्वरी लोचनगोचरं गता॥
दैवादहमद्य तया चपलायतनेत्रया वियुक्तश्च।
अविरलविलोलजलदःसमुपागतचायम्॥

"राम ही यह","यही राम"यह (सम्यक् प्रतीति) "यह राम नहीं है"-इस उत्तर कालिक बाध होने पर "यह राम है"(यह मिथ्या प्रतीति) "यह राम हो न हो ","यह राम सदृश है "इन (चारों प्रकार की) सम्यक् ,मिथ्या,संशय और सादृश्य प्रतीतियों से विलक्षण प्रतिपत्ति के द्वारा "यह राम है "इस प्रकार ग्रहण किये जाने वाले नट में "यह वह"मेरे अंगों में सुधारस की शोभा ,नेत्रों मेंकपूर की भरी पूरी सलाई ,मन से शरीर धारिणी मनोरथ लक्ष्मी ,प्राणेश्वरी नेत्रगोचर हो गई है"।"दैववश आज मैं उस चपल और आयत नेत्रों वाली से वियुक्त हुआ और अविरल चञ्चल बादलों वाला यह समय उपस्थित हो गया"।

श्री शङ्कुक का मत : अनुमितिवाद

रस-निष्पत्ति पर चार आचार्यों के प्रमुख मत हैं —१.**भट्ट लोल्लट**का **उत्पत्तिवाद**, आचार्य शंकुक का अनुमिति वाद, भट्ट नायक का भुक्तिवाद तथा अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद. इनमें से दूसरा मत है न्यायशास्त्र का अनुसरण करने वाले श्रीशंबुक तथा उनके अनुयादियों का। इसका अनुसरण करने वाले निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति न मानकर अनुमिति मानते है। संयोग का अर्थ अनुमापक सम्बन्ध हो जाता है। इस प्रकार इस मत अनुयायी मानते हैं कि रस उत्पन्न नहीं होता अपितु उसका अगुगान किया जाता है। इस सिद्धान्त का सार इस प्रकार है जब नट राम इत्यादि किसी पात्र का अभिनयकरता है उस समय दर्शकों को यह प्रतीत होने लगता है कि यह राम है। यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इस प्रतीति को हम किस प्रकार की प्रतीति गानें।सामान्यतः प्रती ति चार प्रकार की मानी जाती है सम्य क्,मिथ्या,संशय और सादृश्य (१) सम्य क् प्रतीति वहाँ पर होती है , जहाँ कोई वस्तु उपस्थित हो और उसकोसही रूप में जान लिया

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 1, January- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

जाय। सम्यक् प्रतीति किया जाता है। जब 'एव'शब्द विशेषण के साथ लगाया जाता है तब अयोगव्ययच्छेदबाचक होता है,जब विशेष्य के साथ लगाया जाता है तब अन्ययोगव्यवच्छेदक वाचक होता है। "अयं रामः"में 'अयम्'शब्द विशेष्य या उद्देश्य हैऔर 'रामः'विशेषण या विधेय है। विधेय यदि 'एव'शब्द विधेय 'राम'के साथ लगाया जाय "राम एवायम्"यह राम ही है अर्थात् राम के अतिरिक्त और कोई नहीं है , यह अयोगव्यवच्छेद हुआ,यदि 'एव'शब्द उद्देश्य के साथ लगाया जाय "अयमेव राम","यहीराम है"तो अन्ययोगव्यवच्छेद हुआ अर्थात् और कोई व्यक्ति राम नहीं है। इस प्रकार "यह राम ही है"और "यही राम है"ये दोनों सम्यक् प्रतीतियाँ हुई। जहाँ नट राम के रूप में दिखलाई देता है , वहाँ ये दोनों सम्यक् प्रतीतियां नहीं हो सकती। सम्यक् प्रतीति वहीं पर होती है , जहाँ सचमुच राम उपस्थित हों। यहाँ सचमुच राम उपस्थित नहीं है इसलिये यहाँ पर सम्यक् प्रतीति नहीं हो सकती। (२) यहाँ पर "यह राम है "इस प्रकार की मिथ्या प्रतीति भी नहीं हो सकती। मिथ्या प्रतीति वहीं होती है जहाँ राम न हो और कोई व्यक्ति राम समझ लिया जाय। मिथ्या प्रतीति मेंउत्तरकालिक बाध अवश्य होता हैतथा यह प्रतीत होने लगता है कि यह राम नहीं है। यहाँ पर मिथ्या प्रतीति नहीं हो सकती ,क्योंकि उत्तरकालिक बाध नहीं होता। (ऐसा कभी नहीं होता कि अभिनय देखने के बाद दर्शक कहने लगे कि 'अरे'इसे तो मैं राम समझता था। यह तो नट है राम नहीं है।जब ऐसी प्रतीति नहीं होती , तो उत्तर कालिक बाध के अभाव में इसे मिथ्या प्रतीति कहा भी नहीं जा सकता।)

(३) इसे हम "यह राम है या नहीं"इस प्रकार की संशयात्मक प्रतीति भी नहीं कह सकते क्यों कि हमें यहाँ पर संशय का अनुभव नहीं होता (४)"यह राम के समानहै"इस प्रकार की सादृश्य प्रतीति भी यहाँ नहीं होती इसलिये हम इसे सादृश्य प्रतीति भी नहीं कह सकते। इस प्रकार यह प्रतीति सम्यक् ,मिथ्या,संशय औरसादृश्य इन चारों प्रकार की लौकिक प्रतीतियों से विलक्षण एक नये ही प्रकार की प्रतीति होती है । यह प्रतीति उस प्रकार की होती है जैसी कि चित्र में बने हुए घोड़े को देखकर घोड़े की प्रतीति होती है। जब नट--

"यह प्राणेश्वरी मेरे नेत्रों के सामने आ गई है। यह वही मेरी प्रियतमा है जो दर्शन मात्र से ही समस्त संताप को शान्त कर देती है। अतएव मेरे अंगों के लिये यह सुधारस की वृष्टि मालूम पड़ती है। नेत्रों के लिये ऐसी ही आनन्ददायिनी है जैसे कपूर की आर्द्र सलाई हो। यह ऐसी ही आनन्ददायिनी है मानो मन की मनोरथ लक्ष्मी साक्षात् शरीर धारण कर आ गई हो"।

इस प्रकार के संयोग सम्बन्धी वाक्यों का अनुसन्धान कारता हैअथवा "दैववश आज उस चपल और आयत नेत्रों वाली प्रियतमा से वियोग हुआ और आज ही यह ऐसा समय भी आ उपस्थित हुआ जिसमें विलोलजलद निरन्तर चिरे इस प्रकार के काव्यगत वियोग वावयों का अनुसन्धान करता है और शिक्षा तथा अभ्यास का आश्रय लेकर अपना कौशल प्रकट करता है तब उन काव्यगत वाक्यों केअनुसन्धान तथा शिक्षा और अभ्यास के द्वारा प्रदर्शित किये हये कार्य के बल परउसी नट के द्वारा भावों के जिन कारणों ,कार्यों और सहकारियों को अभिनय द्वारा प्रदर्शित करता है वे होते तो वास्तव में कृत्रिम हैं किन्तु कौशल की सूक्ष्मता के कारण वैसे मालूम नहीं पड़ते। इस प्रकार वे अपना कारण ,कार्य और सहकारी नाम छोड़कर विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भाव के नाम से पुकारे जाने लगते है।

इससे एक प्रकार की व्याप्ति बनती है—जहाँ कहीं विभावादि का संयोग होता है वहाँ रति इत्यादि भावों कीसत्ता अवश्य होती है। इस व्याप्ति में गम्य अर्थात्अनुमाप्य तो रति इत्यादि भाव हैं और गमक अर्थात् अनुमापक विभावादिकों का संयोग है। इस व्याप्ति के बल पर नट में रति इत्यादि भावों का अनुमान लगाया जाता है। किन्तु इसमें वस्तु की एक ऐसी विलक्षण सुन्दरता होती है जिससे उसमें आस्वाद को उत्पन्न करने की अपूर्व शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यही कारण है कि अनुमान होते हुये भी अन्य अनुमानों से विलक्षण होने के कारण यह अनुमान रूप में मालूम नहीं पड़ता। जो रति इत्यादि भाव अनुमान से ज्ञात होता है उसका नाम स्थायी भाव पड़ जाता है। इस स्थायी भाव का

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 1, January- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

अनुमान नट में ही लगाया जाता है। यद्यपि यह नट में विद्यमान नहीं होता किन्तु समाज में उपस्थित दर्शकगण वासना से प्रेरित होकर इसका वर्णन करते हैं। यही 'रस' कहलाता है।

इस मत का सार यही है कि जिस प्रकार उड़ती हुई धूल को धुआँ समझकर धूम में नियत अग्नि का कोई अनुमान लगा ले;इसी प्रकार जव नट यह प्रकट करता है कि ये विभावादि हमारे ही हैं तब विभावादि में नियत रति इत्यादि भाव का दर्शक लोग नट में ही अनुमान कर लेते हैं ,यद्यपि वह रति भाव उनमें होता नहीं है। वही अनुमित रतिभाव सामाजिकों के आस्वाद का कारण बनकर 'रस' बन जाता है।

श्री शंकुक की मौलिकता—

श्रीशंकुक का मत इस अंश में **भट्टलोल्लट** से मेल खाता है कि स्थायी भाव अनुकार्य राम में ही मुख्यरूप से विद्यमान होता है। अन्तर यह है कि लोल्लट अनुकार्य में रस मानते हैं , जबकि शंकुक स्थायी भाव मानते हैं। नट रंगमंच पर अनुकार्य का अनुकरण करता है। अब प्रश्न यह उठता है कि अनुकरण तो उसी का किया जा सकता है , जिसको पहले कभी देखा हो। नट ने न कभी पहले राम को देखा और न उनके रतिभाव को देखा फिर वह उसका अनुकरण कैसे कर सकता है?श्री**शङ्कुक** के पास इसका उत्तर यह है कि नट राम को और उन सब परिस्थितियों को काव्य के बल पर जान लेता है। आशय यह है कि श्री शंकुक के मत में ऐतिहासिक राम विभाव नहीं होते , अपितु कवि जिस प्रकार का उन्हें चित्रितकरता है वही रूप राम का होता है और अभिनेता काव्य में चित्रित राम का ही अनुकरण करता है। अनुभाव अभिनय रूप होते हैं। नट इनकी शिक्षा लेता और अभ्यास करता है। इस प्रकार ट्रेनिंग से उसे अनुकरण की क्रिया मालूम पड़ जाती है और वह जान जाता है कि भावों का प्रदर्शन किस प्रकार किया जाता है। उसी ट्रेनिंग का सहारा लेकर वह भावों को प्रदर्शित करता है। किसी एक स्थायीभाव के साथ छोटे-छोटे भाव उठते-गिरते रहते हैं। उदाहरण के लिये रति स्थायीभाव में कभी लज्जा ,कभी हर्ष ,कभी विषाद ,कभी शंका इत्यादि छोटे -छोटे भाव उठ ते-गिरते रहते हैं। किस स्थायीभाव के साथ कौनसे संचारी भाव का योग होता है, इसका ज्ञान नट लोकजीवन से कर लेता है। इस प्रकार काव्य से विभाव,ट्रेनिंग के बल पर अनुभाव और लोक व्यवहार से सञ्चारीभाव इन सबका प्रदर्शन नट रंग मंच पर करता है। वह स्थायीभाव का प्रयत्नपूर्वक प्रदर्शन नहीं करता। किन्तु विभाग ,अनुभाव और सञ्चारीभाव से स्थायी भाव प्रस्फुटित हो जाता है। यही कारण है कि भरत ने रस सूत्र में विभाव ,अनुभाव और सञ्चारी भाव का तो उपादान लिया ; किन्तु स्थायीभाव का प्रयोग नहीं किया क्योंकि स्थायीभाव प्रदर्शन की वस्तु नहीं है। वह साधन नहीं अपितु साध्य है। आचार्य यहाँ विभिन्न विभक्ति (तृतीया) में स्थायीभाव का प्रयोग कर सकता था। वह सूत्र इस प्रकार का लि ख सकता था- "स्थायिना विभा वानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्तिः "। किन्तु भिन्न विभक्ति व स्थायी पद के उपादान से यह आशंका हो सकती थी कि विभावादि के समान स्थायीभाव भी प्रदर्शन की वस्तु है। यह अनर्थ होता। इसीलिये आचार्य ने सूत्र में स्थायी पद का उपादान नहीं किया। स्थायीभाव की प्रतीति काव्य से नहीं मानी जा सकती। का व्य में रति,शोक इत्यादि का अभिधानमात्र होता है। उसमें स्थायीभाव की प्रतीति नहीं हो सकती। उसकी प्रतीति तो अभिनय द्वारा होती है।

प्रश्न यह है कि क्या शब्द के द्वारा रति शोक इत्यादि का प्रयोग अभिनय नहीं माना जा सकता। वाचिक अभिनय भी तो अभिनय ही है। फिर उसका अभिधानकृत कार्य क्यों नहीं होता ?इसका उत्तर यह है कि शब्दों के द्वारा अभिधान करना वाचिक अभिनय नहीं है। वाणी और वाचिक अभिनय एक ही वस्तु नहीं है, जिस प्रकार अंग और आंगिक अभिनय एक ही वस्तु नहीं है । संवाद इस प्रकार के हों कि उनसे रति इत्यादि की प्रतीति हो जाय , उस प्रकार के संवादों को ही वाचिक अभिनय कहा जाता है। जिस प्रकार अंगों की क्रिया से स्थायीभाव की प्रतीति होनेपर आंगिक अभिनय कहा जाता है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 1, January- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

सारांश यह है कि श्री शंकुक के मत में स्थायीभा व प्रस्तुतीकरण की वस्तु नहीं , किन्तु प्रतीत होने की वस्तु है। प्रस्तुतीकरण तो विभाग मेंअनुभाव और संचारी भाव का होता है। इसीलिये आचार्य ने सूत्र में स्थायीभाव शब्द का उपादान नहीं किया। ऊपर विभावादि तथा स्थायीभाव के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह नट के स्तर तक की वस्तु है। यहाँ तक स्थायीभाव रस नहीं बनता ;भाव मात्र ही रहता है। दर्शक अभिनीत रति इत्यादि भाव का नट में अनुमान लगा लेते हैं, तब वह अनुमित स्थायीभाव 'रस' बन जाता है।

इस प्रकार लोल्लट और श्रीशङ्कक की मान्यताओं का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। लोल्लट वास्तविक अनुकार्य राम में ही रस की सत्तामानते हैं। जबकि श्रीशङ्कक के मत में सामाजिक के स्तर पर आकर स्थायीभाव रस का रूप धारण करता है। श्रीशंकुक के मत में उपचित स्थायीभाव रस नहीं , अपितु अनुमित स्थायी भाव रहा है। सहृदय व्यक्ति नित्यप्रति विभिन्न भावनाओं का प्रत्यक्ष करता है। वह अनेकशः हाव-भाव चेष्टाओं को देखता है और उनसे भावनाओंको जान लेता है। इस प्रकार उसके मन में एक व्याप्ति बन जाती है कि जहाँ अमुक चेष्टायें होती हैं , वहाँ अमुक भाव हुआ करता है। जब नट अपने कौशल से उसी प्रकार के हावभाव चेष्टाओं को रंगमंच पर प्रस्तुत करता है। तब व्याप्ति के आधार पर दर्शक (अथवा काव्य का पाठक) उन भावों का अनुमान लगा लेता है। वह अनुमान वस्तुसौन्दर्य के कारण अत्यन्त विलक्षण होता है। अतएव उसमें आनन्द देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। दर्शकों अथवा पाठकों के आनन्द का यही रहस्य है। इस आनन्द को ही रस की संज्ञा प्राप्त होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थायीभाव ही रस नहीं होता किन्तु वह उससे विलक्षण तथा पृथक् होता है। इस प्रकार भट्ट लोल्लट ने जो यह कहा था कि स्थायीभाव ही रस होता है, यह बात जाती रही।

अवास्तविक चेष्टाओं से वास्तविक रस—

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सहृदय को नट में जो विभिन्न चेष्टायें प्रतीतिगोचर होती हैं , वे तो वास्तविक नहीं होती। नट में भावना होती ही नहीं, किन्तु तदनुकूल चेष्टा होती है। तुलसी के शब्दों में—"यथा अनेकन वेषधरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ भाव दिखावई आपु न होवै सोइ"॥

इस प्रकार अवास्तविक चेष्टाओं से वास्तविक रसास्वादन कैसे हो सकता है ?श्रीशङ्कुक केपास इसका उत्तर यह है कि परिशीलक को नट में राम की जो प्रतीति होती है , वह उन सब प्रतीतियों से भिन्न होती है जिनका प्रतिदिन लोक में अनुभव होता है। लोक में चार प्रकार की प्रतीतियाँ होती है—सम्यक् मिथ्या ,संशय, सादृश्य। काव्यगत प्रतीति इन सबसे भिन्न उसी प्रकार की प्रतीति है जैसी कि चित्र में बने हुये घोड़े में घोड़े की प्रतीति हुआ करती है। आशय यह है कि अभिनय या काव्य में कलात्मक प्रतीति को जागृत करने की शक्ति अन्त र्निहित रहती है। जिन लौकिक वस्तुओं और परिस्थितियों को चित्रगत देखकर एक आनन्दमयी चेतना जागृत हो जाती है , उसी प्रकार काव्यगत कला में भी आनन्दमयी संवेदना को जागत करने की शक्ति विद्यमान रहती है, जो अन्ततः रसास्वादन में पर्यवसित हो जाती है।

मिथ्या ज्ञान और कलात्मक प्रतीति—

यदि समीक्षापूर्वक देखा जाय तो यह कलात्मक प्रतीति भी मिथ्या ज्ञान के अधिक निकट है। यह दूसरी बात है कि बाद में बाध नहीं होता , किन्तु यह प्रतीति है तो उसी वस्तु की जो वहाँ नहीं है। चित्र में घोड़ा नहीं होता , किन्तु घोड़ा मालूम पड़ता है। इसी प्रकार नट में रति इत्यादि वासना नहीं होती किन्तु मालूम पड़ती है। चित्रतुरग के दृष्टान्त में आजकल के सिनेमा में चलते -फिरते बोलते-बतलाते चित्रों का उदाहरण अधिक संगत होता है। वहाँ अश्व नहीं होता , किन्तु अश्व मालूम पड़ता है। किन्तु यह मिथ्या प्रतीति होते हुए भी लौकिक मिथ्या प्रतीति से एक प्रकार से भिन्न ही कही जायेगी। उदाहरण के लिये एक स्थान पर मणि की चमकपड़ रही है जो मणि मालूम पड़ती है ;अन्यत्र दीप की

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 1, January- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

चमक पड़ रही है जो मणि मालूम पड़ती है। अलग अलग दो व्यक्ति मणि और प्रदीप की चमक को मणि समझकर लेने दौड़ते हैं। दोनों का मिथ्या ज्ञान तो एक जैसा है;किन्तु उनकी अर्थक्रिया में अन्तर पड़ जाता है। मणि की चमक को मणि समझ कर दौड़ने वाले व्यक्ति को मणि मिल जाती है, किन्तु प्रदीप की चमक को मणि समझने वाला मणि को प्राप्त नहीं कर पाता। यही बात अभिनय के प्रसङ्ग में कही जा सकती है। रति इत्यादि भावना की नट में प्रतीति उसी प्रकार की है जिस प्रकार मणि की चमक में मणि की प्रतीति होती है ;वह यद्यपि मिथ्या ज्ञान मूलक है फिर भी सार्थकता के अनुकूल है। यही बात निम्नलिखित कारिका में कही गई है—

मणिप्रदीपप्रभयोर् मणिबुद्धयाभिधावतोः।
मिथ्याज्ञानाविशेषेऽपि विशेषोऽर्थक्रियां प्रति।।

वस्तुतः यहाँ पर यह निर्णय करना ही कठिन है कि यह प्रतीति किस प्रकार की होती है। न तो यही मालूम पड़ता है कि नर्तक ही सुखी है;न यही प्रतीत होता है कि यही राम है ;न यही प्रतीत होता है कि राम यहाँ है ;न यही मालूम पड़ता है कि यह सुखी नहीं है,न यह कि यह राम है या नहीं ,न यह कि यह उसके सदृश है। किन्तु यह प्रतीति होती ही है। यही बात निम्नलिखित कारिकाओं में कही गई है—

प्रतिभाति न सन्देहो न तत्त्वं न विपर्ययः ।
धीरसावयमित्यस्ति नासावेवायमित्यपि ।।
विरुद्धबुद्धिसभेदादविवेचित - संप्लवः।
युक्त्यापर्यनुयुज्येत स्फुरन्ननुभवः कया।

अर्थात् "न यहाँ सन्देह की प्रतीति होती है,न वस्तुतत्त्व की और न मिथ्याज्ञान को प्रतीति होती है। यह (नट) वह (राम) है, ऐसा नहीं लगता और न यही लगता है कि यह वह नहीं है। यहाँ विरोधी बुद्धियों का ऐसा घालमेल हो गया है कि इसके कारण उसके प्रसार का निर्णय ही नहीं किया जा सकता कि उस स्फुटित होने वाले अनुभव को किस युक्ति से व्यक्त किया जाय।

शंकुक के मत की समीक्षा—

शंकुक के मत का सार यही है कि जिस प्रकार उड़ती हुई धूल को धु आँ समझकर धूम में नियत अग्नि का कोई अनुमान लगा ले, उसी प्रकार मूल पात्र का अनुकरण करते हुये जब नट यह प्रकट करता है कि "ये विभावादि हमारे ही हैं",तब विभावादि में नियत रति इत्यादि भाव का दर्शक उस नट में ही अनुमान लगा लेते हैं , यद्यपि वह रतिभाव उसमें होता नहीं है। वही अनुमित रतिभाव सामाजिकों के आस्वाद का कारण बन जाता है। इस प्रकार यह मत दो तत्वों में सीमित है-अनुकरण और अनुमान। इस मत में भाव का अनुसन्धान नहीं, किन्तु अभिनय किया जाता है। किन्तु इस मत के अपने दोष भी हैं—

१. पहली बात तो यह है कि इस मत में यह भुला दिया गया है कि प्रत्यक्ष ज्ञान चमत्कार का कारण होता है , जो चमत्कार प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा हो सकता है, वह अनुमानजन्य ज्ञान के द्वारा कभी नहीं हो सकता।
२. दूसरी बात यह है कि इस मत में भी इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया गया है कि जब दर्शक का आलम्बन से किसीप्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है, तब उसे रसास्वादन क्यों और कैसे होता है?

---***---***---